दिल्ली शहर में खेती - 5

शहरी खेती में मजदूरों की भूमिका

जन संसाधन केंद्र

शहरी खेती में मजदूरों की भूमिका

शहरी खेती में मजदूरों की भूमिका

यह प्रकाशन क्रिएटिव कॉमन्स एट्रिब्यूशन 4.0 अंतर्राष्ट्रीय लाइसेंस के तहत उपलब्ध कराया गया है : http: //creativecommons.org/licenses/by/4.0

इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से का अनुवाद किया जा सकता है या उसे गैर-व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए लेखकों या पीपुल्स रिसोर्स सेंटर की पूर्व अनुमति के बिना पुनः प्रकाशित किया जा सकता है; लेकिन जन संसाधन केंद्र का सन्दर्भ दिया जाना जरूरी है।

नवंबर, 2020

शोध और पुनर्लेखन : आकिज़ फ़ारूक़, निशांत
डिज़ाइन : आकिज़ फ़ारूक़
छाया चित्र : अविकल पाराशरी, जो अथियाली
मूल शोध और आलेख : राधेश्याम मंगोलपुरी, राजेन्द्र रवि
शब्द संयोजन : अर्जुन सिंह
सहयोग : अनीता कपूर, नान्हू प्रसाद, राहुल कुमार, सुनीता रानी

प्रकाशक
जन संसाधन केंद्र (PRC) [www.prcindia.in]

सहयोग
इंस्टिट्यूट फॉर डेमोक्रेसी एंड सस्टेनेबिलिटी (आईडीएस), और
इंडिया इंस्टीट्यूट फॉर क्रिटिकल एक्शन : सेंटर इन मूवमेंट (CACIM) [www.cacim.net]

संपर्क
मकान सं. 7, लेन सं. 6, ब्लॉक-ए, हिमगिरि एन्क्लेव, पेप्सी रोड, मेन बुरारी रोड, नई दिल्ली -110084
prcindia@yahoo.com | @prc_in | + 91 98682 00316

केवल निजी वितरण के लिए

किसी भी तरह की खेती का काम कई लोगों की सामूहिक मेहनत पर टिका होता है। खेती में मशीनों का अंधाधुंध इस्तेमाल होने के बावजूद दिल्ली में धान रोपने, धान काटने, मशरूम की खेती करने, सब्जी के खेतों से घास निकालने, सब्जी की तुड़ाई करने, फूल तोड़ने आदि कामों में बहुतेरे मजदूर लगते हैं। मजदूरों को खिलाने के लिए इनके रसोइया के तौर पर भी कुछ मजदूर काम करते हैं। इन सभी मजदूरों की अपनी कथा-व्यथा है, अपने अनुभव हैं और अपने सपने हैं।

वर्षों से भारत ने बड़े पैमाने पर शहरीकरण और बेहतर रोजगार के अवसरों, शिक्षा आदि की तलाश में ग्रामीणों के शहर में प्रवासन को देखा है। तेजी से शहरीकरण और बड़े पैमाने पर आबादी का गाँव से शहर और शहर से गाँव की तरफ प्रवासन ने भारत के शहरी परिदृश्य के साथ-साथ ग्रामीण इलाकों के लिए काफी चुनौतियाँ पैदा की हैं।

भारत में तेजी से हुए शहरीकरण के बीच आवास, पानी, सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के लिए ठीक से प्रावधान न होने के कारण संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम ने तो भारत के शहरीकरण को 'गरीबी का शहरीकरण' तक कह डाला (यूएनडीपी, 2009)। अलग-अलग अध्ययनों में यह अनुमान लगाया गया है कि शहरों में मिलने वाले रोजगार (जो धीरे-धीरे निर्माण क्षेत्र कुछ उद्योगों तक सीमित होता गया है), कृषि में बढ़ते घाटे, और जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में खेतिहर मजदूरों का बड़े स्तर पर आना-जाना रहा है (शर्मा और भादुड़ी, 2006; मार्टिन, 2010)। ग्रामीण से शहरी आबादी के इस तेज बहाव ने भोजन, आवास, पानी और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं पर काफी दबाव डाला है।

चिल्ला खादर, दिल्ली
तस्वीर : अविकल पाराशरी

आजीविका की तलाश में गाँव से शहर की ओर आने वाले मजदूरों के लिए शहर से लगे हुए बाहरी इलाकों में रोजगार का मुख्य अवसर खेती ही रही है। खेती के काम में निपुण मजदूर बेहतर मजदूरी, आवास और बेहतर जीवन की आशा के साथ ग्रामीण क्षेत्रों से निकल कर शहर आते हैं। शहरी और शहर से सटे हुए इलाकों में होने वाली खेती प्रवासी ग्रामीण मजदूरों को एक अच्छा रोजगार तो देती ही है; साथ में शहर को अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर बनाने में भी एक अदद भूमिका निभाती है। इस सन्दर्भ में कुछ अच्छी जानकारियाँ प्रेम वझाचरिकल द्वारा "Urban and peri-urban agricultural migration: An overview from Mumbai Metropolitan Region (MMR), India (हिंदी अनुवाद : शहरी और शहर से लगे इलाकों में खेती के लिए प्रवास : मुंबई महानगर क्षेत्र (भारत) का सिंहावलोकन)" शीर्षक से प्रकाशित शोध में मिलती हैं । इसमें मुंबई महानगर क्षेत्र के इलाकों में खेती करने के लिए प्रवास करने वाले मजदूरों का विस्तृत अध्ययन है। इसमें बताया गया है कि धान की रोपाई और कटाई के दौरान मुंबई महानगर क्षेत्र के इलाकों में खेती के लिए सबसे ज्यादा प्रवासी मजदूर आते हैं। इस अध्ययन में ये भी पाया गया कि अलग-अलग इलाकों में खेती में मिलने वाली मजदूरी भी अलग-अलग है। उसमें भी पुरुष मजदूरों की दैनिक मजदूरी, महिला मजदूरों की तुलना में ज्यादा है, और उन्हें साथ में खाना, पान-मसाला और कभी-कभी शराब के लिए अलग से खर्च मिल जाया करता है।

पल्ला गाँव
तस्वीर : जो अथियाली

दिल्ली भारत के उन प्रदेशों में शामिल है, जहां खेती में मशीनीकरण की शुरुआत सबसे पहले हुई। इसके बावजूद आज भी कृषि में मजदूरों की जरूरत किसी न किसी स्तर पर होती ही है। आजादी के पहले दिल्ली के कृषि-कार्य में जो मजदूर लगते थे, वे स्थानीय हुआ करते थे। उनकी मजदूरी आमतौर पर अनाज में दी जाती थी, नगदी का प्रचलन नहीं था। आजादी के बाद देश के विभिन्न कोनों से लोग दिल्ली में आए हैं — उनमें से कुछ को कल - कारखानों में काम मिला है; कुछ को दुकानों में। दिल्ली में निर्माण-कार्य भी एक फलता-फूलता व्यवसाय है। इसमें भी बड़े पैमाने पर मजदूरों की मांग रही है, किंतु बेरोजगारी इतने बड़े पैमाने पर है कि विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों के पास नियमित काम नहीं है। इसलिए उन्हें जो काम मिल जाता है, वही काम वे कर लेते हैं। कुछ लोग कृषि क्षेत्र में काम को प्रमुखता देते हैं, क्योंकि अपने गांव में भी वे कृषि-कर्म का एक हिस्सा रहे हैं। खेती के काम का हुनर उन्हें इस दिल्ली में भी आजीविका दिलाने में मदद करता है। दिल्ली में हमें ऐसा मजदूर मिलना लगभग असंभव है, जो केवल खेती पर निर्भर रहकर रोज-रोज काम पाता हो। खेती अधिकतर मजदूरों का आंशिक पेशा है। अपनी रोजी-रोटी को ज्यादा सुनिश्चित करने के लिए उसे अन्य पेशों के काम भी करने होते हैं।

जगतपुर गाँव
तस्वीर : जो अथियाली

अपनी रोजी-रोटी को ज्यादा सुनिश्चित करने के लिए उसे अन्य पेशों के काम भी करने होते हैं। दिल्ली के आर्थिक सर्वे (2018-19) के मुताबिक दिल्ली में केवल 0.71% कामगार ही खेती के कामों में लगे हैं (दिल्ली का आर्थिक सर्वेक्षण, 2018-19)। लेकिन अगर भारत की पिछली आम जनगणना के आँकड़ों को मानें तो दिल्ली में 1% कामगार 6 महीने से ज्यादा और करीब 3% कामगार 6 महीने से कम समय के लिए खेती करके ही आजीविका पाते हैं। जनगणना के मुताबिक ये पौध रोपने, पशु पालन, मछली पालन, और खेती से जुड़ी अन्य गतिविधियों में लगे हैं। ये अंतर मामूली लग सकता है, लेकिन असल आबादी के तौर पर देखें तो यह अंतर हजारों का है। यह अंतर क्यों है? तयशुदा मापदंडों के हिसाब से शहरीकरण के बढ़ने के लिए दिल्ली में खेती का घटता जाना जरूरी है (जनगणना और अन्य सरकारी विभागों में शहर कहते ही उसे हैं जहाँ 80 प्रतिशत 'पुरुष' कामगार आबादी खेती से इतर के कामों में लगी हो)। तो कहीं ऐसा तो नहीं कि शहरीकरण की रफ्तार बढ़ाने के लिए आर्थिक सर्वे में खेती की आबादी को वास्तविकता से कम करके दिखाया जा रहा है।

दिल्ली के खेतिहर मजदूरों को 250 रुपये से 300 रुपये तक की दिहाड़ी मजदूरी मिल जाती है। ज्यादातर मजदूर गांव-जवार के 4-5 लोगों के साथ मिलकर एक ही कमरे में इकट्ठा रहते हैं और साथ-साथ बनाते-खाते हैं। जो पैसा बचता है, उसे घर भेज देते हैं परिवार के घर-खर्च के लिए।

जगतपुर गाँव
तस्वीर : जौ अथियाली

पल्ला में हमने कई खेत मजदूरों से बातचीत की तो पता चला कि वह सब मासिक तनखाह पर काम करते हैं। जो जितने महीने काम करता है उसको उतने महीनों की तनखाह मिल जाती है। योग्यता और कौशल के आधार पर किसी को महीने के बारह तो किसी को तेरह हजार रुपये मिलते हैं। रहने के लिए बांस की चौड़ी-चौड़ी मचानें बनाई हुई हैं। मचानों के ऊपर प्लास्टिक का तिरपाल लगा लिया जाता है और प्लास्टिक गर्म न हो, इसके लिए ऊपर से पुआल बिछा दिया जाता है। इन्हें रहने के लिए अलग से किराया नहीं देना पड़ता, लेकिन खाने का इन्तजाम अपनी तनखाह में से ही करना होता है।

तिग्गीपुर, सुंगरपुर, पल्ला आदि गाँवों में धान की खेती होती है। तिग्गीपुर में तो धान के साथ मशरूम, गुलाब और केले तक की खेती की जाती है। यहाँ कुछ मजदूर मशरूम की खेती तो कुछ धान के खेतों में काम करते मिल जाएँगे। इन गाँवों में काम करने वाले मजदूर स्थानीय नहीं होते। ये मजदूर आमतौर पर बिहार से आते हैं। एक सीजन में जितना काम मिलता है, उतने दिन रहते हैं और फिर वापस चले जाते हैं। धान के मौसम में ये दो बार आते हैं — एक बार रोपनी के समय, दूसरी बार कटनी के समय। आमतौर पर दोनों बार एक से दो महीने तक काम मिल जाता है। ये मजदूर समूह में आते हैं, समूह में काम करते हैं और समूह में विदा होते हैं। एक टोली में सभी मजदूर अमूमन एक ही जिले या आस-पास के गाँव के ही होते हैं। इन मजदूरों का एक अगुआ होता है जिसके निर्देशन में ये काम करते हैं। हमें मजदूरों से बातचीत करके पता चला कि ठेके पर एक किले खेत में धान की रोपनी की दर 3500 रुपये और कटनी की दर 5-6 हजार रुपये है। दिल्ली के एक स्थानीय व्यक्ति से ये सभी मजदूर संपर्क में रहते हैं जो उन्हें सीजन शुरू होने पर फोन करके सूचित कर देता है, आने-जाने का किराया देता है और ठहरने की जगह भी उपलब्ध कराता है।

पल्ला गाँव
तस्वीर : जो अथियाली

मशीनों का प्रयोग बढ़ने से इनके रोजगार पर संकट भी बढ़ा है। लेकिन मजदूरों का कहना है कि मशीन से धान काटने पर जाने-अनजाने कुछ धान खेत में भी गिरता है। उसकी पुआल लुंज-पुंज होती है और उसका इस्तेमाल मुश्किल होता है। लेकिन मजदूरों द्वारा काटे गए धान की डंठल से धान निकाल लेने के बाद भी वह ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसका उपयोग मशरूम की खेती के लिए झोपड़ी बनाने में खूब होता है। इस डंठल को मशीन से काटकर इससे सूखा चारा बनाने में भीसहूलियत होती है। यह डंठल पुआल से भी महंगा बिकता है। खाना बनाने के लिए ये एक भंडारी को साथ लेकर चलते हैं। 25 मजदूरों की एक टोली में हमने पाया कि सुबह चाय-नाश्ते से लेकर दिन में दो बार की रोटी और रात का खाना बनाने और खिलाने के लिए एक भंडारी है। भंडारी को एक महीने के काम के लिए 15 हजार रुपये दिए जाते हैं। 10-10 साल से ये मजदूर एक ही आदमी के पास काम करते आ रहे हैं। हमारे साथ बातचीत में ऐसे ही एक मजदूर ने बताया कि वे करीब 35 साल से ये काम करते आ रहे हैं। बदलाव इतना ही हुआ कि पहले काम पंजाब में था, अब दिल्ली में है। दिल्ली में वे करीब 10 साल से यह काम कर रहे हैं। जिस व्यक्ति के बुलावे पर ये मजदूर दिल्ली आते हैं, वह काम को ठीक ढंग से चलाने तथा भुगतान के बाद बाकी रह गए पैसों को दिलाने में मदद करते हैं। कुछ पैसा हाथों-हाथ मिल जाता है और कुछ पैसा उधार रह जाता है और बाद में बैंक खाते में पहुँचता है।

(दिल्ली में कचरे के प्रबंधन की जरूरत और कचरे के प्रति नए नजरिये पर यह संक्षिप्त प्रस्तुति जन संसाधन केंद्र द्वारा प्रकाशित शोधपरक पुस्तक *परिदृश्य से अदृश्य होती खेती* पर आधारित है।)

चिल्ला खादर, दिल्ली
तस्वीर : अविकल पाराशरी

चिल्ला खादर, दिल्ली
तस्वीर : अविकल पाराशरी

सन्दर्भ

प्रेम वझाचरिकल (2014) अर्बन एंड पेरी-अर्बन एग्रीकल्चरल माइग्रेशन : एन ओवरव्यू फ्रॉम मुंबई मेट्रोपोलिटन रीजन (एमएमआर), इंडिया। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज. 3 (3). पृष्ठ 347-365.

डायरेक्टरेट ऑफ़ इकोनॉमिक्स एंड स्टेटिस्टिक्स, दिल्ली सरकार (2019), दिल्ली का आर्थिक सर्वेक्षण 2018-19।

जन संसाधन केंद्र (2020), परिदृश्य से अदृश्य होती खेती।

अमृता शर्मा और अनिक भादुड़ी (2006) द "टिपिंग पॉइंट" इन इंडियन एग्रीकल्चर : अंडरस्टैंडिंग द विथड्रॉल ऑफ द इंडियन रूरल यूथ।

पी. मार्टिन (2010), क्लाइमेट चेंज, एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट एंड माइग्रेशन।

यूएनडीपी (2009), इंडिया : अर्बन पॉवर्टी रिपोर्ट-2009।

यह पुस्तिका कई लोगों के सामूहिक प्रयास का परिणाम है। सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा है दिल्ली के विभिन्न हिस्सों में खेती करने वाले किसानों, मछुआरों, मजदूरों, पशुपालकों, नवीन तरीकों से खेती करने वाले व्यवसायियों का जिन्होंने हमारे साथ बातचीत करने के लिए वक्त निकाला और अपनी राय और जानकारियाँ हमसे साझा कीं, जन संसाधन केंद्र की टीम जिन्होंने जमीनी शोध करके "परिदृश्य से अदृश्य होती खेती" रिपोर्ट को तैयार किया और जिसके बलबूते हम इस पुस्तिका को तैयार कर सके।

जन संसाधन केंद्र का लक्ष्य सामाजिक आन्दोलनों से प्राप्त मूल्यवान सीखों और संभावित विकल्पों के बारे में सब लोगों की कल्पनाओं को साथ लाकर एकजुटता की नई आधारशिला बनाना है। यह पहल संसाधनों पर लोगों का नियंत्रण वापस लाने की संभावनाएँ बनाने के लिए, और यह समझने के लिए की गई है कि वे कैसे इसके जरिये भूख, बेघरी, प्रदूषण, और जाति, लिंग, धर्म पर टिके सामाजिक अन्याय का उन्मूलन कर सकते हैं। हम संसाधनों के हक के इर्द-गिर्द हो रहे (या संभावित) संघर्ष में आंदोलन समूहों और समुदायों के साथ जुड़कर योगदान करते हैं। सामूहिक प्रतिरोध और रचनात्मक कार्यक्रम के लिए संसाधन उत्पन्न करने के उद्देश्य से हम नियमित रूप से नीतियों की निगरानी, शोध, प्रकाशन और जमीनी स्तर पर नेटवर्किंग के उपाय करते हैं।